

# THIRTEEN HINDI POETS

---

Yesterday, while typing up a poem by Manglesh Dabral for a student, it occurred to me to choose a few more favourites and add them to our website for others to read also. My hope is that this small selection will lead readers to explore modern Hindi poetry, which is so rich in variety and profound in implication. Many works by the poets included here are easy to find online, for example through the very useful (if typographically haphazard) site [kavitakosh.org](http://kavitakosh.org).

In selecting this baker's dozen of poets and their works, I have been guided by a single criterion: that after reading a poem, the axis of one's being should have shifted, at least for a moment, by a degree or two. Why thirteen poets? More than twelve, less than fourteen.

The very brief notes on the poets make no mention of the many awards and prizes awarded to each one of them (except Tulsidas), but these rituals are part and parcel of today's literary world.

I have not provided glossaries, but could do so if this would be helpful.

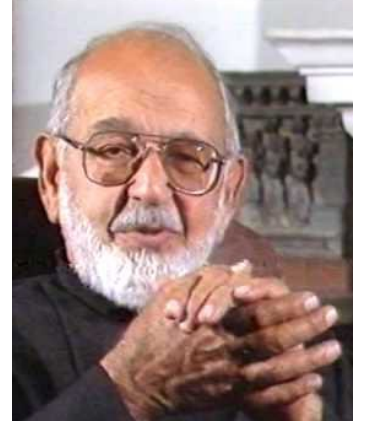
---

Feedback welcome: [rupertsnell@austin.utexas.edu](mailto:rupertsnell@austin.utexas.edu)

Rupert Snell

24th November 2014

## अज्ञेय



### रात में गाँव

झींगुरी की लोरियाँ  
सलु गयी थीं गाँव को,  
झोंपड़े हिंडोलों-सी झुला रही हैं  
धीमे-धीमे  
उजली कपासी धूम-डोरियाँ ।

### काँपती है

पहाड़ नहीं काँपता,  
न पेड़, न तराई;  
काँपती है ढाल पर के घर से  
नीचे झील पर झरी  
दिये की लौ की  
नन्ही परछाई ।

### सहारे

उमसती सांझ  
हिना की गन्ध  
किसी की याद  
कैसे-कैसे प्राण-लेवा  
सहारे हैं  
जीने के !

### छंद

मैं सभी ओर से खुला हूँ  
वन-सा, वन-सा अपने में बन्द हूँ  
शब्द में मेरी समाई नहीं होगी  
मैं सन्नाटे का छन्द हूँ ।

### प्रणाम

भोर  
नील के पटल पर एक नाम  
ओस में खिल आते हैं सूर्य  
प्रकाश ! प्रणाम ।

---

Sacchidanand Hiranand Vatsyayan 'Agyeya' (1911-87) is virtually the muse of post-Independence Hindi poetry. His many collections were represented in two volumes entitled सदानौरा in 1986; our first two poems are from its second volume, while the third is from नदी की बाँक पर छाया (1981), and the last two are from ऐसा कोई घर आपने देखा है (1986).

## अशोक वाजपेयी



### मुझे चाहिए

मुझे चाहिए पूरी पृथ्वी  
अपनी वनस्पतियों, समुद्रों  
और लोगों से घिरी हुई,  
एक छोटा-सा घर काफ़ी नहीं है ।

एक खिड़की से मेरा काम नहीं चलेगा,  
मुझे चाहिए पूरा का पूरा आकाश  
अपने असंख्य नक्षत्रों और ग्रहों से भरा हुआ ।

इस जरा-सी लालटेन से नहीं मिटेगा  
मेरा अंधेरा  
मुझे चाहिए  
एक धधकता हुआ ज्वलंत सूर्य ।

थोड़े-से शब्दों से नहीं बना सकता  
मैं कविता,  
मुझे चाहिए समूची भाषा –  
सारी हरीतिमा पृथ्वी की  
सारी नीलिमा आकाश की  
सारी लालिमा सूर्योदय की ।

## धर्मवीर भारती



### ढीठ चाँदनी

आज-कल तमाम रात  
चाँदनी जगाती है

मुँह पर दे-दे छींटे  
अधखुले झरोखे से  
अन्दर आ जाती है  
दबे पाँव धोखे से

माथा छू  
निंदिया उचटाती है  
बाहर ले जाती है  
घण्टों बतियाती है  
ठण्डी-ठण्डी छत पर  
लिपट-लिपट जाती है  
विह्वल मदमाती है  
बावरिया बिना बात !

आज-कल तमाम रात  
चाँदनी जगाती है

## गगन गिल



### जाते हुए

एक दिन प्रेम आयेगा तुम्हारे घर और घर में अन्न न होगा । एक दिन प्रेम आयेगा तुम्हारे जीवन में और भर चुके होंगे सब पन्ने । एक दिन प्रेम आयेगा तुम्हारे पास और तुम्हें मालूम न होगा, प्रेम है यह ।

बदल गया होगा उसका मुख इस जन्म तक आते-आते । थक गया होगा उसका सिर । भर चुकी होगी उसमें उम्र भर की नींद ।

जाते हुए प्रेम देखेगा तुम्हें अजीब खाली आँखों से । मृत्यु के करीब सपनीली हो जायेंगी उसकी आँखें । और गीली ।

---

Gagan Gill was born in Delhi in 1959, and worked as a journalist before turning to poetry and literature as a profession. Each of her collections of poetry has a unique theme, and is imbued with profound insight. Our poem is from यह आकांक्षा समय नहीं (1998).

## केदारनाथ सिंह

### सन् 47 को याद करते हुए

तुम्हें नूर मियाँ की याद है केदारनाथ सिंह  
गेहुएँ नूर मियाँ  
ठिगुने नूर मियाँ  
रामगढ़ बाज़ार से सुर्मा बेचकर  
सबसे अन्त में लौटने वाले नूर मियाँ  
क्या तुम्हें कुछ भी याद है केदारनाथ सिंह  
  
तुम्हें याद है मदरसा  
इमली का पेड़  
इमामबाड़ा  
तुम्हें याद है शुरू से अखीर तक  
उन्नीस का पहाड़ा  
क्या तुम अपनी भूली हुई स्लेट पर  
जोड़-घटाकर  
यह निकाल सकते हो  
कि एक दिन अचानक तुम्हारी बस्ती को छोड़कर  
क्यों चले गये थे नूर मियाँ  
क्या तुम्हें पता है  
इस समय वे कहाँ हैं  
ढाका  
या मुलतान में  
क्या तुम बता सकते हो  
हर साल कितने पत्ते गिरते हैं  
पाकिस्तान में  
  
तुम चुप क्यों हो केदारनाथ सिंह  
क्या तुम्हारा गणित कमज़ोर है



---

Kedarnath Singh was born in 1934 in Ballia District, U.P., and was educated in nearby Banaras. Now retired, he served as a Professor of Hindi at Jawaharlal Nehru University for many years. His many volumes of highly accessible poetry include यहाँ से देखो (1983; 1989 edition), from which our poem is taken.

## कुँवर नारायण

### कविता की ज़रूरत



बहुत कुछ दे सकती है कविता  
क्यों कि बहुत कुछ हो सकती है कविता  
ज़िंदगी में

अगर हम जगह दें उसे  
जैसे फूलों को जगह देती हैं पेड़  
जैसे तारों को जगह देती है रात

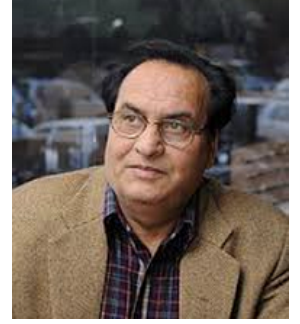
हम बचाये रख सकते हैं उसके लिए  
अपने अन्दर कहीं  
ऐसा एक कोना  
जहाँ ज़मीन और आसमान  
जहाँ आदमी और भगवान के बीच दूरी  
कम से कम हो ।

वैसे कोई चाहे तो जी सकता है  
एम नितान्त कवितारहित ज़िन्दगी  
कर सकता है  
कवितारहित प्रेम

---

Kunwar Narain was born in 1927 and counts the Lucknow-Ayodhya-Faizabad triangle as his home – though he now lives in Delhi. Much of his poetry is represented in a volume of translations by his son Apurva: but not this one, which is from कोई दूसरा नहीं, 1993.

## लीलाधर जगूड़ी



### चुल्लू की आत्मकथा

मैं न झील न ताल न तलैया  
न बादल न समुद्र  
मैं यहाँ फँसा हूँ इस गढ़ैया में  
चुल्लू भर आत्मा लिये  
सड़क के बीचों-बीच

मुझ में भी झलकता है आसमान  
चमकते हैं सूर्य सितारे चाँद  
दिखते हैं चील कौवे तोते और तीतर  
मुझे भी हिला देती है हवा

मुझमें भी पड़कर  
सड़ सकती है  
फूल पत्तों सहित हरियाली की आत्मा

रोज कम होता  
मेरी गँदली आत्मा का पानी  
बदल रहा है शरीर में  
चुपचाप  
भाप बनकर  
बाहर निकल रहा हूँ मैं ।



## मंगलेश डबराल



### टॉर्च

मेरे बचपन के दिनों में  
एक बार मेरे पिता एक सुन्दर सी टॉर्च लाये  
जिसके शीशे में गोल खांचे बने हुए थे जैसे आजकल कारों की हेडलाईट में होते हैं  
हमारे इलाके में रोशनी की वह पहली मशीन  
जिसकी शहतीर एक चमत्कार की तरह रात को दो हिस्सों में बाँट देती थी ।

एक सुबह मेरी पड़ोस की दादी ने पिता से कहा  
बेटा इस मशीन से चूल्हा जलाने के लिए थोड़ी सी आग दे दो

पिता ने हंसकर कहा चाची इसमें आग नहीं होती सिर्फ उजाला होता है  
यह रात होने पर जलती है  
और इससे पहाड़ के उबड़-खाबड़ रास्ते साफ दिखाई देते हैं

दादी ने कहा बेटा उजाले में थोड़ी आग भी रहती तो कितना अच्छा था  
मुझे रात को भी सुबह चूल्हा जलाने की फ़िक्र रहती है  
घर-गिरस्ती वालों के लिए रात में उजाले का क्या काम  
बड़े-बड़े लोगों को ही होती है अँधेरे में देखने की जरूरत  
पिता कुछ बोले नहीं बस खामोश रहे देर तक ।

इतने वर्ष बाद भी वह घटना टॉर्च की तरह रोशनी  
आग मांगती दादी और पिता की खामोशी चली आती है  
हमारे वक्त की कविता और उसकी विडम्बनाओं तक ।

## रघुवीर सहाय

### पानी

पानी का स्वरूप ही शीतल है

बाग में नल से फूटती उजली विपुल धार

कल-कल करता हुआ दूर-दूर तक जल

हरी में सीझता है

मिट्टी में रसता है

देखे से ताप हरता है मन का, दुख बिनसता है ।



### पानी के संस्मरण

कौंध । दूर घोर वन में मूसलाधार वृष्टि

दुपहर: घना ताल: ऊपर झुकी आम की डाल

बयार: खिड़की पर खड़े, आ गयी फुहार

रात: उजली रेती के पार, सहसा दिखी

## राजी सेठ

### मुगल गार्डन

हमने मान लिया  
फूल तुम्हारे हैं  
फल तुम्हारे हैं  
मखमली दूब तुम्हारी है  
संतरी तुम्हारे हैं

मान लिया  
उस चौहद्दी के बीच का आसमान  
तुम्हारा है  
सरहदों से टकरा कर आती हवा  
तुम्हारी है

तुम भी जान लो  
जड़ें हमारी हैं  
खाद हमारी हैं  
तुम्हें चौहद्दी भर धूप दे देने वाला  
आकाश हमारा है  
प्रकाश हमारा है  
ढलावों से बहता आता पानी हमारा है  
बीजों को लाद लाती हवा हमारी है  
शेष सारी धरा हमारी है।



## सविता सिंह

### मैं तारों का एक घर

न जाने कितने तारे  
मेरी आँखों में आ-आ कर ध्वस्त होते जा रहे हैं  
उनकी तेज़ रोशनी  
गहन उष्मा उनकी  
आकर मेरी आँखों में बुझती रही है  
और मैं इन तारों का  
एक विशाल दीप्त घर बन गई हूँ  
जिसमें मनुष्यों की भाँति ये मरने आते हैं

आज भी हर रात  
एक तारा उतरता है मुझमें  
हर रात उतना ही प्रकाश मरता है  
उतनी ही उष्मा चली जाती है कहीं...



---

Savita Singh was born in 1962 in Bihar; she studied in Delhi and Montreal, and is now Professor and Director, School of Gender and Development, Indira Gandhi National Open University in Delhi. This poem is from her first collection of poetry, *अपने जैसा जीवन* (2000).

## तुलसीदास



रामचरितमानस (लंकाकाण्ड से)

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक ।  
कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक ॥

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी । परम प्रताप तेज बल रासी ॥  
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी । ससि केसरि गगन बन चारी ॥

बिथुरे नभ मुकुताहल तारा । निसि सुंदरी केर सिंगारा ॥  
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई । कहहु काह निज निज मति भाई ॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई ॥  
मारेउ राहु ससिहि कह कोई । उर महुँ परी स्यामता सोई ॥

कोउ कह जब बिधि रतिमुख कीन्हा । सार भाग ससि कर हरि लीन्हा ॥  
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं । तैहि मग देखिअ नभ परिछाहीं ॥

प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा । अति प्रय निज उर दीन्ह बसेरा ।  
बिष संजुत कर निकर पसारी । जारत बिरहवंत नर नारी ॥

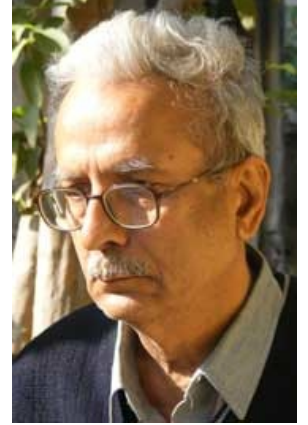
कह हनुमंत सुनहु प्रभ ससि तुम्हार प्रय दास ।  
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास ॥ १२ (क) ॥

Readers may be surprised to see Tulsidas, whose रामचरितमानस bears the date 1574, in such modern company as our other poets; but the poets themselves won't be, and neither would Tulsi. Here, Rama asks his comrades to explain the true nature of the dark patch on the moon. The novel vowel signs seen in मारेउ, कोउ, and तैहि indicate long syllables that have to be read as short for metre thus: *mārēu kōu, tēhi*.

## विनोद कुमार शुक्ल

### हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था

हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था  
व्यक्ति को मैं नहीं जानता था  
हताशा को जानता था  
इसलिए मैं उस व्यक्ति के पास गया  
मैंने हाथ बढ़ाया  
मेरा हाथ पकड़कर वह खड़ा हुआ  
मुझे वह नहीं जानता था  
मेरे हाथ बढ़ाने को जानता था  
हम दोनों साथ चले  
दोनों एक दूसरे को नहीं जानते थे  
साथ चलने को जानते थे ।



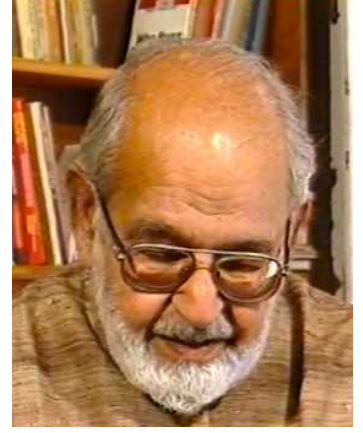
---

Novelist and poet Vinod Kumar Shukla was born on new year's day, 1937. His first poetry collection, लगभग जयहिंद, appeared in 1971, his second, वह आदमी चला गया नया गरम कोट पहनकर विचार की तरह, a decade later. Our poem is from अतिरिक्त नहीं, 2000.

## अज्ञेय

### नाच

एक तनी हुई रस्सी है जिस पर मैं नाचता हूँ ।  
जिस तनी हुई रस्सी पर मैं नाचता हूँ  
वह दो खम्भों के बीच है ।  
रस्सी पर मैं जो नाचता हूँ  
वह एक खम्भे से दूसरे खम्भे तक का नाच है ।  
दो खम्भों के बीच जिस तनी हुई रस्सी पर मैं नाचता हूँ  
उस पर तीखी रोशनी पड़ती है  
जिस में लोग मेरा नाच देखते हैं ।  
न मुझे देखते हैं जो नाचता है  
न रस्सी को जिस पर मैं नाचता हूँ  
न खम्भों को जिस पर रस्सी तनी है  
न रोशनी को ही जिस में नाच दीखता है :  
लोग सिर्फ नाच देखते हैं ।  
पर मैं जो नाचता हूँ  
जो जिस रस्सी पर नाचता हूँ  
जो जिन खम्भों के बीच है  
जिस पर जो रोशनी पड़ती है  
उस रोशनी में उन खम्भों के बीच उस रस्सी पर  
असल में मैं नाचता नहीं हूँ ।



मैं केवल उस खम्भे से इस खम्भे तक दौड़ता हूँ  
कि इस या उस खम्भे से रस्सी खोल दूँ  
कि तनाव चुके और ढील में मुझे छुट्टी हो जाये –  
पर तनाव ढीलता नहीं  
और मैं इस खम्भे से उस खम्भे तक दौड़ता हूँ  
पत तनाव वैसा ही बना रहता है  
सब कुछ वैसा ही बना रहता है ।  
और वही मेरा नाच है जिसे सब देखते हैं  
मुझे नहीं  
रस्सी को नहीं  
खम्भे नहीं  
रोशनी नहीं  
तनाव भी नहीं  
देखते हैं – नाच !

If you are wondering why this small collection of poetry includes not just one but *two* by Agyeya, count again: actually it includes five. This rightly famous poem, written in 1976, is from the second volume of सदानीरा (1986).